परिवार को सुसंस्कृत कैसे बनाएँ

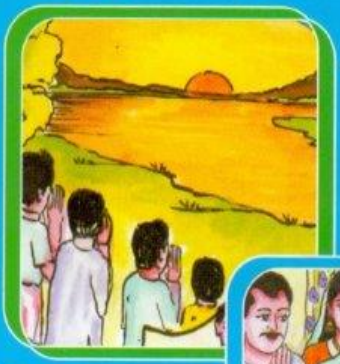

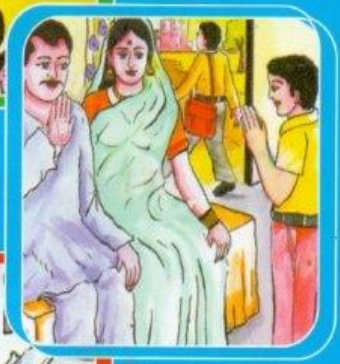

-श्रीराम शर्मा आचार्य

परिवार को सुसंस्कृत कैसे बनाएँ ?

❖

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

डॉ० प्रणव पंड्या (एम० डी०)

❖

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

मो. ०९९२७०८६२८७, ०९९२७०८६२८९

फैक्स नं०- २५३०२००

पुनरावृत्ति सन् २०११ मूल्य : ४.०० रुपये

प्रकाशक :

युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

लेखक :

पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

डॉ० प्रणव पंड्या (एम० डी०)

पुनरावत्ति सन् **२०११**

मुद्रक :

युग निर्माण योजना प्रेस

गायत्री तपोभूमि, मथुरा-३ पिन-२८१००३

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

परिवार को सुसंस्कृत कैसे बनाएँ?

शरीर में विभिन्न अंग होते हैं। दो हाथ, दो पाँव, दो नाक, दो कान, दो आँखें, बीस उँगलियाँ आदि। शरीर इन सभी अंगों को जोड़कर बना है, इसमें से कोई अंग कट जाए, क्षत-विक्षत हो जाए, पक्षाघात या लकवा लग जाए तो शरीर की शोभा और सौंदर्य मारा जाता है। कई बार यह विकृति सामान्य जीवन क्रम में भी कठिनाइयाँ उत्पन्न करती है, उससे लोगों को कष्ट और दुःख होते देखा जाता है।

ऐसा ही मनुष्य का एक शरीर-परिवार होता है। इसे सामाजिक शरीर कहेंगे। अपने परिवार में प्रवेश करके ही मनुष्य सामाजिक प्राणी बनता है। परिवार समाज का एक शरीर है, ठीक वैसा ही जैसा एक व्यक्ति का शरीर, वह भी अनेक अंगों को जोड़कर बनता है। पत्नी, पुत्र-पुत्रियाँ, भाई, ताऊ-ताई, भाभियाँ, पिता एवं माता आदि शरीर की तरह परिवार शरीर के अंग हैं। यह सभी अंग यदि ठीक-ठाक काम करते रहते हैं तो परिवार में शांति, समृद्धि और सुव्यवस्था बनी रहती है, पर यदि घर का कोई व्यक्ति उच्छृंखल व्यसनी, दुर्बुद्धि, आलसी, अनाचारी, कर्कश हो तो परिवार की शोभा और सौंदर्य नष्ट हो जाता है। शरीर के प्रत्येक अंग के समुचित विकास, स्वस्थ और सुडौल होने से शरीर सुख मिलता है। पारिवारिक जीवन की सुख-सुविधा के लिए भी उसके सब अंगों का स्वस्थ और सुविकसित होना आवश्यक है।'

जिस प्रकार शरीर के विभिन्न कल-पुर्जे मिलकर पूर्णता होती है और उन सबके ठीक काम करने पर निरोगिता रहती है, उसी प्रकार परिवार का उचित गठन मानव-जीवन की सुव्यवस्था का ठोस आधार बनता है। अन्य सारे सुख साधन एक ओर और परिवार का सुसंतुलन यदि एक ओर रखा जाए तो पारिवारिक

जीवन का महत्त्व अधिक मानना पड़ेगा। जिन लोगों के साथ मिल-जुलकर जीवन-क्रम चलाना पड़ता है, उनकी व्यवस्था अव्यवस्था का अपने ऊपर भारी प्रभाव पड़ता है। अशांत और विक्षुब्ध पारिवारिक जीवन को लेकर कोई व्यक्ति न तो संतुष्ट रह सकता है और न प्रसन्न, भले ही बाहरी सुविधाएँ कितनी ही बढ़ी-चढ़ी क्यों न हों?

परिवार का पालन ही नहीं निर्माण भी—परिवार के लोगों को सुखी और संतुष्ट रखने के लिए प्राय: लोग अधिक से अधिक धन जुटाने की व्यवस्था करते हैं। अच्छा भोजन, अच्छे कपड़े और अनेक तरह के मनोरंजन के साधन जुटाते हैं, तो भी आये दिन गृह-कलह हुआ करता है। पुत्रों की स्वेच्छाचारिता, भाइयों की बेईमानदारी, पत्नी से विचार न मिलने की शिकायत, माता-पिता का असंतोष अधिकांश लोगों को बना रहता है। इस प्रकार के प्रसंग सामने आते हैं और उनके कारणों पर गंभीरता से विचार करते हैं तो यह मानना पड़ता है कि साधन जुटाने में लोगों का ध्यान गया, पर परिवार-निर्माण के लिए उन्होंने कुछ भी प्रयत्न नहीं किया। गृहस्थ का पालन बड़ी बात नहीं है, उतना तो सामान्य पशु-पक्षी भी कर लेते हैं। धन, मकान, जायदाद आदि का उत्तराधिकार परिजनों को दे जाना उतना महत्त्व नहीं रखता, जितना उनको सद्गुणी सुशील बनाना। परिवार को सुसंस्कृत और सुविकसित बनाना नितांत आवश्यक है। चरित्र के साँचे में ढाले गए परिवार कम साधनों में भी पूर्ण प्रसन्नता का जीवन व्यतीत कर लेते हैं। दुर्गुणी व्यक्तियों के लिए तो संपन्नता भी अभिशाप सिद्ध होती है।

एक गाँव में एक किसान रहता था। किसान बड़ा नेक और परिश्रमी था। उसका एक संपन्न परिवार था। घर में रुपए पैसे और साधनों का कोई अभाव न था, पर उसका घर सुखी न था। सब आपस में खींचातनी रखते थे। भाई-भाई में नहीं बनती थी। लड़के उद्दंड और दुराचारी थे। सास-बहुओं में नहीं पटती थी। घर कोलाहल से भरा रहता था। शांति का कहीं नामोनिशान तक न था। विपुल साधन संपत्ति होते हुए भी किसान को रत्ती-भर का भी सुख उपलब्ध न था।

किसान इससे ऊब कर अंत में संत बाबा वैरागीदास के पास गया और बोला—महाराज, मेरी ग्रह दशा ठीक नहीं है, घर वाले

आपस में लड़ते-झगड़ते और उथल-पुथल मचाए रहते हैं, कोई उपाय बताइए, ताकि इस दुःख से छुटकारा मिले।

संत ने किसान को शाम तक कुटी में ही ठहरने के लिए कहा। किसान ठहर गया। संत की कुटी के आगे से प्रतिदिन कुछ स्त्रियाँ लकड़ियों के बोझ लेकर गुजरती थीं और कुछ देर वहाँ बैठकर सुस्ताया करती थीं। नियमानुसार वे उस दिन भी आईं। उनकी दशा पहले जैसी ही थी। किसी का बोझ अधखुला था, किसी की लकड़ियाँ उलझी हुई थीं। किसी की रस्सी ढीली थी, किसी की कमजोरी के कारण गाँठ ही टूट गई थी। लकड़ियाँ जमीन पर पटक कर सब फिर से बोझ बाँधने और सुधारने में लग गईं। इस हैरानी के कारण स्त्रियों के चेहरे उद्वेग और उत्तेजना से भरे हुए थे। इसके लिए बेचारी एक-दूसरे को कोसती भी जाती थीं।

उनमें एक किशोर बालक भी था। उसका बोझ तो औरों से छोटा था, पर करीने के साथ बँधा हुआ था। एक-एक लकड़ी सुंदर ढंग से सजाई हुई थी। सब एक मजबूत रस्से में बँधी हुई, क्या मजाल जो कोई लकड़ी इधर-उधर खिसक जाए और सब स्त्रियाँ तो आराम करने की अपेक्षा बोझ सुधारने की उलझन में थीं, पर वह बालक उन सबकी ठिठोली कर रहा था, उनकी कमजोरी की चुटकी ले लेकर हँस रहा था, उसकी प्रसन्नता में कोई अंतर न था। न ही कोई ऊब और उत्तेजना से वह पीड़ित जान पड़ता था।

बाबा बैरागीदास ने किसान को बुलाया और बताया-देखो भाई, इन स्त्रियों की तरह लकड़ियाँ काट लेने में ही सफलता नहीं, वरन उन्हें इस बच्चे की तरह सुदृढ़ और सुव्यवस्थित ढंग से बाँधना भी तो चाहिए। आपकी असफलता का रहस्य भी ऐसा ही है। आपने परिवार बनाया तो है, पर उसका निर्माण नहीं किया। यह दशा तो ठीक है, पर 'गृह-दशा' व्यवस्थित नहीं, उसे सुधारने का प्रयत्न करो तो तुम्हारे सब दुःख दूर हो जाएँगे

यह विषम स्थिति घर-घर—किसान की दुर्दशा की कहानी ढूँढ़ी जाए तो वह आज प्रायः प्रत्येक घर में देखने को मिल सकती है। धन ऐश्वर्य वाले कुटुंब भी ईर्ष्या-द्वेष की अग्नि में जलते देखे जा सकते हैं। स्वार्थ, संकीर्णता और असहिष्णुता के कारण पारिवारिक

जीवन नरक जैसी स्थिति में पड़ा सुलगा करता है। परिवार निर्माण के लिए आवश्यक प्रयत्न न करने के अभाव में धन, शिक्षा, पद, प्रतिष्ठा आदि सब कुछ होते हुए भी क्षुद्रता और संकीर्णता के कारण घटित होने वाली छोटी मोटी घटनाओं के कारण परिवार अपनी प्रतिष्ठा एवं सुदृढ़ता खोते चलते हैं और कुछ दिन में ही बुरी तरह बिखर जाते हैं। यह स्थिति आत्मिक एवं लौकिक दोनों ही दृष्टि से हानिकारक होती है।

शरीर में नए खून की तेजी, मस्तिष्क में अनुभव की कमी और अंत:करण में भावनाओं का प्रकाश न होने के कारण अक्सर घर के वयस्क लोग भी कुछ न कुछ ऊट-पटांग करते रहते हैं। उनमें जोश होता है, पर होश कम। शिक्षा होती है, पर संस्कार नहीं। इसका असर पारिवारिक स्थिति पर भी बुरा ही पड़ता है और इन दोषों से विकसित होने वाले ग्रह-कलह के कारण हमारे कुटुंब टूटते हुए चले जाते हैं।

कई बार बुढ़ापे की कठिनाइयों के कारण माता-पिता भी चिड़चिड़े होते हैं। वे भी अनुपयुक्त सोचते और अनुपयुक्त करते हैं। समझाने-बुझाने में अपना अपमान मानते हैं और खिन्न होते हैं। स्त्रियों में तो प्राय: ही झगड़े हुआ करते हैं। सास-बहू के झगड़े, घर-घर फैले पड़े हैं। यह सब इसलिए होता है कि गृहस्थ के निर्माण में बहुत कम ध्यान दिया जाता है। लोग ढर्रे का जीवन ही जीने में सुविधा अनुभव करते हैं। कुछ साहस कर पारिवारिक-परिस्थितियों को अनुकूल बनाने, उनमें व्यवस्था लाने का थोड़ा भी प्रयत्न किया जाए तो घरों में सुख-शांति और समुन्नति का वातावरण आसानी से पैदा किया जा सकता है।

परिवार आत्म विकास की प्रयोगशाला—गृहस्थ-जीवन एक प्राकृतिक, स्वाभाविक, आवश्यक और सर्वसुलभ प्रयोगाशाला है, जिसका समुचित रीति से पालन और संचालन किया जाय तो मनुष्य आत्मोन्नति के गुरुतर लक्ष्य को आसानी से संभव बना सकता है। लड़का जब तक अकेला रहता है, तब तक उसकी आत्म-भावना संकुचित और संकीर्ण रहती है। उसकी प्रत्येक इच्छा और प्रत्येक कार्य अपने आप तक ही सीमित रहता है। वह दूसरों का ध्यान न रख अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति चाहता

है। अपने लिए अच्छा खाना, अच्छे कपड़े, शौक मौज, मनोरंजन, मटरगश्ती आदि साधन। इन सबसे उसकी स्वार्थ-भावना अग्रसर रहती है, यद्यपि उस समय वह स्वाभाविक सा होता है पर प्रत्यक्ष रूप से इस प्रकार की संकीर्ण भावना ही आध्यात्मिक प्रगति में बाधक होती है। गृहस्थ का नियमित पालन इस स्वार्थ और अहंभाव से छुड़ा कर उसे सुविकसित जीवन की ओर प्रेरित करता है।

जब विवाह हो जाता है तो बच्चे की आत्म-भावना का दायरा बढ़ता है, वह अपनी पत्नी की सुख-सुविधाओं के बारे में सोचने लगता है, अपने सुख और अपनी मर्जी पर प्रतिबंध लगाकर पत्नी की आवश्यकताएँ पूरी करता है। उसकी सेवा और प्रसन्नता में अपनी शक्तियों को खर्च करता है। इस तरह उसके आत्म-भाव की सीमा का विस्तार होता है, एक से बढ़कर दो तक आत्मीयता फैलती है। इसके बाद एक छोटे से शिशु का जन्म होता है। बालक की सेवा सुश्रूषा में, पालन पोषण में निःस्वार्थ भाव से इतना मनोयोग लगता है कि अपनी निजी सुख-सुविधाओं का ध्यान भूल जाता है। इस प्रकार अपनी रुचियाँ कम होती हैं, आत्म-संयम बढ़ता है। अपनी स्त्री, पुत्र परिजनों आदि में अपनी आत्मीयता के क्षेत्र को विकसित करते जाने से मनुष्य उस लक्ष्य को बड़ी आसानी से प्राप्त कर लेता है, जो एकांतवास और निर्जन में रहकर कठिन योग-साधनाओं के द्वारा भी संभव नहीं। अकेले से पति-पत्नी दो में, फिर बालक के साथ तीन में, संबंधियों, पड़ौसियों, गाँव, प्रांत, प्रदेश, राष्ट्र और विश्व में यह आत्मीयता क्रमशः बढ़ती है और छोटा-सी बालक अपनी अंतःभूमिका में विश्व-मानव की अनुभूति की ओर अग्रसर होता रहता है।

चार आश्रमों का क्रम इस आवश्यकता की पूर्ति के लिए बना था, उनमें सबसे अधिक समय और आत्म-विस्तार की संभावनाएँ गृहस्थ में ही सन्निहित होती थीं, अतएव गृहस्थ धर्म की सुव्यवस्था और सुसंचालन पर अधिक ध्यान दिया गया था। उन नियमों पर चलते रहने के कारण अधिक से अधिक सदस्य संख्या वाले परिवार भी संयुक्त कुटुंब में बने रहते थे,कलह और कटुता के लिए कोई समय ही न मिलता था।

परिवर्तित परिस्थिति और उसका निराकरण—किसी वस्तु का समुचित रीति से उपयोग करने पर वह साधारण हो तो भी बहुत बड़ा लाभ दिखा देती हैं। बहुत अच्छी वस्तु भी दुरुपयोग से हानिकारक बन जाती है। दूध जैसा पौष्टिक पदार्थ अविधि-पूर्वक सेवन किया जाए तो वह भी घातक बन सकता है और संखिया, पारा, कुचिला जैसे विषों को भी उचित रीति से शोधन कर लिया जाता है तो वे अमृत के समान रसायन का काम देते हैं। गृहस्थ-जीवन के संबंध में भी यही बात है। जिन परिवारों में नियम-प्रतिबंधों का पालन, व्यवहार, विचार, शिष्टाचार और सदाचार पर अमल किया जाता है और एक रस्सी में मजबूत बँधी लकड़ियों की तरह परस्पर बँधे रहते हैं, उनमें लौकिक समृद्धि और पारलौकिक लक्ष्य प्राप्ति के सभी साधन उपलब्ध हो जाते हैं, पर विद्वेष की आग लग जाने से—कलह और कटुता का तूफान उठ खड़ा होने से वही पारिवारिक जीवन नारकीय वातावरण में बदल जाते हैं।

आज की स्थिति ठीक ऐसी ही है परिवार बना लेने में कोई कठिनाई नहीं है, पर उद्देश्य तो तब पूरा होता है, जब वह सुव्यवस्थित बना रहे। यह एक जिम्मेदारी है, जो हर सद्गृहस्थ को पूरी करनी चाहिए। माली अपने ऊपर जिस बगीची की जिम्मेदारी लेता है, उसे हरा-भरा बनाने, फलने-फूलने देने, झाड़-झंखाड़ से रक्षा करने का जी-जान से प्रयत्न करता है। यही दृष्टिकोण एक सद्गृहस्थ का भी होना चाहिए। उसे अनुभव करना चाहिए कि परमात्मा ने इन थोड़े से पेड़ों को सींचने, खाद देने, सँभालने और रखवाली करने का भार विशेष रूप से मुझे दिया है तो उनके प्रति किसी तरह की असावधानी न की जाए। अपने परिवार के हर एक व्यक्ति को स्वस्थ रखने, शिक्षित बनाने, सद्गुणी, सदाचारी और चतुर बनाने की पूरी-पूरी जिम्मेदारी अपने ऊपर समझते हुए—इसे ईश्वर की आज्ञा का पालन मानते हुए—अपना उत्तरदायित्व पूरा करने का प्रयत्न करना चाहिए। अपने परिवार के सदस्यों की सेवा भी—परमार्थ, पुण्य, लोक-सेवा, ईश्वर-पूजा से किसी प्रकार कम नहीं है।

दुःख की बात है कि अब इस जिम्मेदारी का कुशलतापूर्वक पालन नहीं होता। एक बगीचे को सुंदर बनाने में जिस प्रकार माली

को सावधानी से श्रम करना पड़ता है, उसी प्रकार परिवार में सद्गुणों का विकास किया जाना भी नितांत आवश्यक है। आमतौर पर परिजनों के पालन-पोषण, शिक्षा, आरोग्य आदि का ध्यान हम सब रखते हैं, पर उन्हें सद्गुणी बनाने के लिए पर्याप्त अवसर नहीं दिया जाता। गुणों के अभाव में ही परिवार विशृंखलित होते हैं। आपस में प्रेम-भावना न हो तो अपार धन और उत्तम स्वास्थ्य भी भाई-भाइयों को लड़ने से नहीं बचा सकते। घर की स्त्रियाँ असंतोष फैला रही हों तो शिक्षित और माता-पिता के आज्ञानुवर्ती पुत्र भी ऐसे परिवार में रहना पसंद न करेंगे। या तो वे स्वयं भी कूद पड़ेंगे अथवा संबंध विच्छेद कर लेंगे। परिवार निर्माण में मुख्य कर्त्तव्य परिजनों के गुणों का विकास करना ही है। लोगों के स्वभाव की संकीर्णता दूर करना और उन्हें सद्गुणी बनाना गृहपति और परिवार के प्रत्येक बुद्धिमान परिजन का कर्त्तव्य होना चाहिए, तभी गृहस्थ-जीवन का सदुपयोग आत्मोन्नति के लिए संभव है। उसी अवस्था में लौकिक और भौतिक सुख समृद्धि का भी रसास्वादन किया जा सकता है।

परिवार प्रशिक्षण—स्कूल के बच्चों की शिक्षा के लिए पाठ्यक्रम निश्चित होते हैं, बच्चे पढ़ते रहते हैं, तो कोर्स की तमाम बातें याद हो जाती हैं। प्रशिक्षण का एक तरीका, व्याख्यान और भाषण देना भी हैं। बंदूक चलाना, निशाना साधना, तैरना, कुश्ती-कसरत यह सब प्रशिक्षण लोगों को मौखिक रूप से और प्रदर्शन द्वारा भी दिए जाते हैं। पर परिवार का प्रशिक्षण, जिसमें परिजनों के गुणों का विकास करना मुख्य उद्देश्य होता है, मौखिक रूप से संपन्न नहीं होते, उसमें व्यक्तिगत आचरण का अधिक महत्त्व होता है। परिवार के बच्चे अपने बड़ों का अनुकरण करके ही अपना स्वभाव बनाते हैं। जैसे गुण बड़ों के होते हैं, उसी के अनुसार बच्चे और स्त्रियाँ ढलती हैं और पारिवारिक स्थिति भी उसी के अनुरूप बनती जाती हैं।

इसीलिए आवश्यक है कि परिवार के बड़े-बूढ़े संचालक और बुद्धिमान व्यक्ति अपने व्यवहार द्वारा परिजनों का प्रशिक्षण करें। यदि आप नहीं चाहते कि आपके घर वाले गाली बकें और कटु बोलें तो आपको भी वाक्-संयम रखना चाहिए और मुख से

गंदे शब्दों का प्रयोग नहीं करना चाहिए। परिवार को व्यसनों से बचाना है तो आप स्वयं भी बीड़ी, सिगरेट, तंबाकू आदि का स्तेमाल न करें। आप स्वयं शिष्ट-आचार नहीं करेंगे तो दूसरे घर वालों से वैसी आशा कैसे रखी जा सकती है? अपनी आदतें अच्छी हों तो दूसरे लोग भी उन्हीं का अनुसरण करने लगते हैं। गाँधीजी के आश्रम पर इस बात का जोर दिया जाता था कि लोग अपने गुणों का विकास स्वयं करें। वहाँ लोग अपनी सेवा आप करते थे, सफाई खाना बनाना, नियमियतता, व्यवस्था आदि का प्रत्येक आश्रमवासी पूरा-पूरा ध्यान रखता था। इसका प्रभाव यह होता था कि किसी भी आगंतुक को वे बातें बतानी नहीं पड़ती थीं और लोग स्वेच्छा से आश्रम-जीवन में सम्मिलित होते ही उसका पालन करने लगते थे। गाँधीजी के आश्रम की तरह हमारे घरों में भी गुणों के विकास का का व्यावहारिक प्रशिक्षण आवश्यक है।

पारिवारिक जीवन के संबंध में मुख्यत: दो दृष्टिकोण हैं। एक तो मोह-ममता, मालिकी-स्वार्थ और अहंकार का है। इस रूप में घर में किसी का कोई आध्यात्मिक लक्ष्य नहीं होता है। ऐसे परिवारों में भी कभी-कभी एकता, संपन्नता आदि कई गुण देखने को मिल जाते हैं, पर लक्ष्य-विहीन गृहस्थियाँ आमतौर पर विशृंखलित हो जाती हैं। भौतिक समृद्धि कितनी ही करली जाए, पर आत्मिक गुणों के अभाव में सुख और सौभाग्य का क्रम कभी देर तक नहीं चल पाता। यह अवस्था—यह दृष्टिकोण ही बंधन, पतन, पाप और नरक की ओर जाने वाला होता है।

दूसरा दृष्टिकोण आत्म-त्याग, सेवा, प्रेम और परमार्थ का है। यह मुक्ति, उत्थान, पुण्य और स्वर्ग प्रदान करता है। सामान्य रीति से इस दृष्टि से भी पारिवारिक जीवन की हलचलें पहले जैसी ही दिखाई देंगी, पर ऐसे परिवारों के जीवनोद्देश्य विकसित होंगे। कर्त्तव्य-पालन की दृष्टि से जब एक-दूसरे के साथ प्रेम, ममता, स्नेह और आत्मीयता से जुड़े होंगे तो इसी बहाने वे आत्म-कल्याण के पथ पर अग्रसर हो रहे होंगे। यह जीवन-लक्ष्य प्राप्त करने का सर्वोत्तम तरीका है।

हमें अपने परिवार के पालन और निर्माण में दूसरे नंबर का दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और इस प्रकार के क्रिया-कलाप रखने

चाहिए जिससे सदस्यों के जीवन उत्कर्ष की ओर उन्मुख रहें और उनमें गुणों का अभाव न रहने पाए। स्वस्थ शरीर, स्वच्छ मन और सभ्य समाज की रचना में योगदान देने की सर्वोत्तम इकाई अपना परिवार है, यदि हम उसका निर्माण करने में तत्पर होते हैं तो वह अपनी, अपने देश, धर्म और जाति की एक बहुत बड़ी सेवा मानी जाएगी।

(१) सुघड़ दिनचर्या—परिवार के बड़े सदस्यों को जिनसे छोटे व्यक्ति सीखते और प्रभावित होते हैं, अपनी जीवन-चर्या बड़ी सुसंतुलित रखनी चाहिए। हाथी-नदी या तालाब में उतरता है तो हर कदम आहिस्ता से टटोल-टटोल कर आगे बढ़ाता है। पारिवारिक जीवन में बुराइयों का समावेश न हो, इसके लिए प्रत्येक सदस्य की विशेषतया गृह-पति की दिनचर्या ऐसी होनी चाहिए, जिससे गंदगी और फूहड़पन न दिखाई दे रहा हो।

प्रधान रूप से ध्यान देने वाली बात यह है कि किसी भी सदस्य के मस्तिष्क में दूषित प्रभाव डालने वाला कार्य हम न करें, हमारी दिनचर्या कुछ इस तरह व्यवस्थित की हुई होनी चाहिए। प्रातःकाल सोकर उठने से लेकर सायंकाल सोने जाने तक हम प्रत्येक कार्य हाथी की तरह टटोल-टटोल कर करें और इस बात की सावधानी रखें—'कहीं कोई ऐसा न गड्ढा आ जाए, जिससे बाद में पश्चात्ताप करना पड़े।' इस प्रकार की सावधानी, आहार-बिहार, वार्तालाप, चलने, उठने, बैठने के प्रत्येक तौर-तरीके में होनी चाहिए। सुघड़-दिनचर्या परिवार निर्माण का प्रथम सूत्र है।

(२) सुव्यवस्था—परिवार छोटा रहे तो कुछ हरज नहीं, पर उसे व्यवस्थित रखना चाहिए। घर का कौन-सा बच्चा कहाँ है? क्या कर रहा है? अमुक व्यक्ति किस काम में लगा है? उसके लिए भोजन पहुँचा या नहीं? किसी को कोई मानसिक या शारीरिक कष्ट तो नहीं? इन सब बातों की आवश्यक जानकारी और उनकी पूर्ति समय पर यथा रीति होती रहे। अव्यवस्था ही परिवारों में अशांति उत्पन्न करने में डाकिन का काम करती है। उससे दूर रहना आवश्यक है। घर के बड़े बुजुर्गों, माताओं का एक-दूसरे के प्रति यह कर्त्तव्य है कि वे घर की हर व्यवस्था का पाबंदी के साथ पालन करते रहें।

(३) **सुसंस्कृत वेशभूषा**—मानवीय स्वभाव की छोटी-छोटी बातें भी सामूहिक तौर पर बड़ी प्रभावशाली होती हैं। आज जो सर्वत्र चारित्रिक पतन के दृश्य दिखाई देते हैं, उसका एक कारण विकृत वेष-विन्यास माना जाता है। बाल-वृद्धि के लोग शारीरिक सौंदर्य और रूप का आकर्षण बढ़ाने के लिए तरह-तरह के वेष-विन्यास और रूप सज्जा किया करते हैं। इससे आत्म-संतोष तो क्या होता है, भड़कीला वेष-विन्यास और बाहरी चमक बढ़ाने में मनुष्य के चरित्र का ही पतन हुआ है। अभारतीय वस्त्रों और सजावट से बचकर रहने में ही अपना कल्याण है, अपने धर्म अपनी संस्कृति के अनुरूप केश, वस्त्र और वेशभूषा में चरित्र और आत्मिक-बल बढ़ाने वाली सादगी एवं शालीनता पाई जाती है, उसका परित्याग करना अशोभनीय ही कहा जा सकता है।

वस्त्र पहिनने की जो परंपरा पूर्व पुरुषों की थी, यह बड़ी सरल और उपयोगी रही है। पुरुष—धोती, कुर्त्ता, जाकेट, टोपी तथा स्त्रियाँ-साड़ी और सलूके पहनती रही हैं। यह चयन सादगी और सरलता की दृष्टि से तो श्रेष्ठ रहा ही, इसका संबंध स्वास्थ्य एवं मनोवैज्ञानिक रीति से बुराइयों से बचाने वाला भी रहा है। हमें अपनी वेश-भूषा पर गर्व करना चाहिए और भड़कीले, बचकाने वेश-विन्यास से सदैव बचना चाहिए। घर में ऐसी फैशन-परस्ती को प्रवेश न करने देना चाहिए, जिसे उच्छृंखल या उच्च और रंगीनी-शौकीनी कहा जा सके।

(४) सात्विक आहार—मनुष्य के स्वास्थ्य और मानसिक स्थिति का निर्माण आहार पर निर्भर है। भारतीय मनीषियों ने स्वास्थ्य, सद्गुण और सदाचार की दृष्टि से सदैव सात्विक भोजन पर ही जोर दिया है। माँस, मदिरा, मछली, अण्डे, तीखे कसैले, चटपटे भोजन का यहाँ सदैव बहिष्कार किया गया है, क्योंकि ये पदार्थ आत्मिक-दुर्बलता पैदा करने वाले होते हैं, परिवार निर्माण में इसका बड़ा महत्त्व है। इस संबंध में हमें गीता के इस आदेश का पालन करना चाहिए—

आयुः सत्व बलारोग्य सुख प्रीति विवर्धनाः।
रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृया आहार सात्विक प्रियाः॥

सात्विक आहार ही आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति की वृद्धि करने वाला होता है, इसके विपरीत राजसिक आहार,

चाहे वह अधिक स्वादिष्ट तथा चटपटे क्यों न हों, प्रारंभ में अच्छे-भले लगें, पर वे अंत में रोग, दुःख और चिंता उत्पन्न करने वाले ही सिद्ध होते हैं।

सात्विक भोजन से आध्यात्मिक भावों की वृद्धि होती है। वह विशेष रूप से महिला सदस्यों का कर्त्तव्य है कि वे सरल, सुपाच्य और सादा भोजन तैयार करें। साथ ही यह भी ध्यान रखा जाना चाहिए कि कोई चोरी से छिपकर बाजार की गंदी चीजें न खाए। इससे स्वास्थ्य की हानि तो है ही नैतिक दृष्टि से भी यह चोरी अथवा ओछापन माना जाता है। अच्छा, पौष्टिक भोजन लोगों को घर पर मिले, ऐसी व्यवस्था होनी चाहिए।

(५) सुमधुर वाणी—मधुर, शांत एवं पवित्र शब्दों का उच्चारण करने वाले व्यक्ति अपने शब्दों द्वारा न केवल अपने विचारों, भावनाओं एवं संस्कारों को परिमार्जित करते हैं, अपितु अन्य परिजनों को प्रभावित करके उनके जीवन में भी नई स्फूर्ति, नई प्रेरणा एवं नया मोड़ उत्पन्न करते हैं। पारिवारिक जीवन में इसका बड़ा महत्त्व है, इससे परिवार में स्नेह और प्रेम बना रहता है। हमें अमृतमय वाणी बोलने के साथ ही कम बोलने का भी अभ्यास बनाना चाहिए। जो वाणी सत्य, उत्साह तथा उल्लास बढ़ाने वाली, निष्कपट, मधुर, तथा हितकर होगी, वही अमृतमय कहलाएगी। संत कबीर ने कहा है—

शब्द शब्द सब कोई कहें, शब्द के हाथ न पाँव।
एक शब्द औषधि करे, एक शब्द करे घाव॥
मधुर वचन है औषधि, कटुक वचन है तीर।
श्रवण द्वार पै संचरै सालै सकल शरीर॥

शब्दों के सदुपयोग से संबध जुड़ते हैं, कटु वचनों से कलह और उत्पात बढ़ता है। अपने परिवारों की सुस्थिरता के लिए इस सूत्र को सदैव ध्यान में रखना चाहिए और भूल कर भी कोई अप्रिय बात मुख से न निकालनी चाहिए। अधिकार वश कठोर वचन निकालना भी बुरा होता है, चाहे बच्चे से ही कुछ कहा जाए, पर शांत-संयत एवं यथाशक्य नम्र वाणी का ही प्रयोग किया जाना अच्छा होता है।

(६) शिष्ट-आचार—परिवार में शिष्टाचार का पालन कड़ाई से होता रहे। बड़ों को सम्मान मिलता है तो वे छोटों से

स्नेह करते हैं और अपने अनुभव एवं योग्यता का यथाशक्ति लाभ अपने प्रियजनों को देने का प्रयत्न करते हैं। आदर, मिष्ठ-वाणी, आज्ञा पालन आदि प्रत्येक बात में शिष्टाचार का ध्यान रखना चाहिए। शिष्टाचार की छोटी-छोटी बातें भी महत्त्वपूर्ण होती हैं। अच्छी आदतों का एक-एक कण मिलकर महान व्यक्तित्व बनता है और छोटी-छोटी बुरी आदत भी क्लेश, कलह कटुता और पतन का कारण बन जाती है। दैनिक व्यवहार में विनीत होने की कला का अभ्यास परिवार में होना चाहिए। यह केवल दिखावे के लिए नहीं, वरन आंतरिक भावनाओं के साथ होना चाहिए। यदि हम यह चाहते हैं कि हमारे बच्चे, स्त्री, भाई आदि हमारे साथ सज्जनोचित व्यवहार करें, तो हमें भी शिष्टाचार का पालन करना पड़ेगा। शिष्टता, सभ्यता की जननी है, इसी से हमें औरों से गौरव भी मिल सकता है।

(७) संस्कार-स्रोत-अस्तिकता—ईश्वर की उपासना से बुद्धि की सूक्ष्म ग्रहणशीलता और संस्कारों की संवेदनशीलता जाग्रत होती है। फलस्वरूप लोगों के भौतिक मन, आध्यात्मिक जीवन की ओर मुड़ जाते हैं। शांति, सुख, स्थिरता और समृद्धि, इन चारों बातों के लिए इस प्रकार का जीवन आवश्यक है, जो केवल आस्तिकता से ही संभव है। उससे बचने के लिए परिवारों में धार्मिक वातावरण बनाए रखना आवश्यक है। भारतीय संस्कृति में पग-पग पर पर्व, संस्कारों के प्रचलन का उद्देश्य भी यही है। ईश्वरवादी हो जाने से प्रगति के द्वार बंद हो जाते हैं, यह सोचना भूल है, दरअसल सच्ची उन्नति तो आस्तिकता से ही संभव है। धर्मशील व्यक्ति के लिए साधनों की कोई कमी नहीं रहती। तुलसीदासजी ने लिखा है—

जिमि सरिता सागर पहँ जाहीं।
यद्यपि ताहि कामना नाहीं।।
तिमि सुख सम्पत्ति विनहिं बुलाए।
धर्मशील पहँ जाहि सुहाए।।

पारिवारिक-जीवन में सरलता और सत्य-निष्ठा बनाए रखने के लिए हम लोगों को सच्चे अर्थों में आस्तिक रहना चाहिए। इसमें व्यक्तिगत आत्म-कल्याण की संभावनाएँ तो सन्निहित हैं ही साथ ही पारिवारिक समुन्नति और द्वेष-दुर्गुणों से बचे रहने का आधार भी यही है।

(८) स्वच्छता और सफाई—गंदगी एक दुर्गुण है, उससे मनुष्य का जीवन दीन-हीन और मलिन बनता है, रोग की परिस्थितियाँ सामने आती हैं। इससे बचने का आसान तरीका यही है कि प्रत्येक व्यक्ति दैनिक कार्य में, घर, बाहर, आँगन, द्वार, दीवार, छत की सफाई और स्वच्छता का ध्यान रखे। अपने, बच्चों के, धर्म-पत्नी के, भाई-भौजाई सबके कपड़ों की स्वच्छता पर एक दृष्टि अवश्य रखनी चाहिए। अपने आपमें सभी सदस्यों को स्वच्छता और सफाई का महत्त्व मालूम होना चाहिए। इसकी उपेक्षा करने से स्वास्थ्य पर अहितकर प्रभाव पड़ सकता है, अतः शरीर, वस्त्र, निवास आदि से संबंधित प्रत्येक वस्तु, हर क्रिया में स्वच्छता का ध्यान चाहिए। सप्ताह या महीने में एक दिन सामूहिक सफाई की व्यवस्था भी रहनी चाहिए। इससे सबके स्वास्थ्य और आरोग्य लाभ की आशा बनी रहती है।

(९) शारीरिक श्रम—अब लोगों की ऐसी धारणा हो गई है, जो जितनी अधिक आराम की जिंदगी बिताता है, वह उतना ही बड़ा है, अब इसे बदलना चाहिए। वस्तुतः मनुष्य की महत्ता का आधार यह है कि वह कितना श्रम करता है? अपने घर के लोग श्रम से जी चुराते हैं तो यह दुर्भाग्य की बात ही होगी। यदि कोई इसी में अपना सौभाग्य समझता है तो उसका बड़प्पन एक दिन धूल में मिलता दिखाई देगा।

बापू के शब्दों में—"किसी तरह का परिश्रम न करने वाला व्यक्ति संसार की किसी वस्तु का उपभोग करता है तो यह चोरी है।"

यह तो व्यक्तिगत आत्म-कल्याण की दृष्टि से हुआ, सामूहिक रूप से गृहस्थ की समुन्नति बाहरी झगड़ों और रोग-शोक से बचने के लिए भी श्रमशीलता आवश्यक है। काम से जी चुराना एक बहुत बड़ा दुर्गुण है। परिवार के ऐसे सदस्य ही घरों में कठिनाईयाँ उत्पन्न करते हैं। अतः पहले से ही घरों का वातावरण श्रम-प्रेरक होना चाहिए। आलस्य और प्रमाद पारिवारिक संगठन के दो रावण और मेघनाद सरीखे शत्रु हैं, इनसे बचकर ही पारिवारिक सुख-समुन्नति की रक्षा संभव है। लोकमान्य तिलक कहा करते थे—संसार में एक ही वस्तु को मैं परम पवित्र मानता हूँ, वह है—मनुष्य का अपनी

विकास-यात्रा के लिए अनवरत-श्रम। परिवार के प्रत्येक सदस्य में एक-दूसरे के प्रति सद्भावनाएँ रखकर ईर्ष्या-द्वेष दुर्भावनाओं से दूर रहकर निष्काम भाव से श्रमरत रहना जीवन की सर्वोच्च साधना है। इससे कभी विमुख नहीं होना चाहिए।

(१०) समय का सदुपयोग—गृहस्थ-जीवन की सुव्यवस्था के लिए धन कितना आवश्यक है? यह बात सब जानते हैं। परिजनों की योग्यता बढ़ाने के लिए, उन्हें खुशहाल रखने, अच्छा खाने और अच्छा पहनाने का एकमात्र साधन धन है। धन के अभाव में गृहस्थी की अनेक आवश्यकताएँ अधूरी रह जाती हैं। अविकसित परिवार में किसी तरह की चेतना नहीं होती, किसी तरह का आनंद नहीं होता। पर सीमित व्यवसाय, सीमित श्रम में धन कम ही उपलब्ध हो सकता है। साधन संपन्न बनने के लिए समय का सदुपयोग आवश्यक है। सब सदस्यों को श्रमशील होना चाहिए, साथ ही समय के एक-एक क्षण का लाभ अपनी आर्थिक योग्यता बढ़ाने में लगाना चाहिए। छोटे-छोटे कुटीर-उद्योग, बागवानी, शाक-उत्पादन आदि में समय लगाकर सहायक आजीविकाएँ उपलब्ध हो सकती हैं। आलस्य में इधर-उधर समय गँवाना पाप ही कहा जाएगा। उन्नति के लिए और पारिवारिक-जीवन में प्राण और प्रसन्नता जाग्रत रखने के लिए धन की आवश्यकता होती है, वह समय के सदुपयोग से ही संभव है। समय ही धन है, उसे व्यर्थ में कभी भी नहीं गँवाना चाहिए।

(११) शिक्षा—पारिवारिक-जीवन को सुविकसित करने के लिए जिस मानसिक-विकास की आवश्यकता होती है, उसके लिए शिक्षा की भारी आवश्यकता है, पर जब भी कभी ज्ञान का प्रकाश मनुष्य की अंतरात्मा में प्रवेश करता पाया एवं देखा गया है तो शिक्षा उसमें माध्यम होती है। आज के विज्ञान के युग में तो विचार का महत्त्व और भी अधिक बढ़ गया है वह भी शिक्षा के द्वारा ही संभव है।

परिवार के बच्चों की शिक्षा को हम अनिवार्य समझें। एक भी बालक निरक्षर न रहे, पर यह ध्यान रहे कि अभी जो अशिक्षित प्रौढ़ हैं, उनके विकास का क्रम भी अधूरा न रहे। इसके लिए परिवार के प्रत्येक परिजन को शिक्षित करने की जरूरत है। हमारे

देश में गृहस्थ की दुर्दशा के कारणों में अशिक्षा मुख्य है और वह भी विशेष रूप से स्त्रियों की। अतः अब हर शिक्षित परिजन का यह कर्त्तव्य है कि वह कम से कम अपने परिवार, अपनी धर्मपत्नी को तो साक्षर बनाने का कार्यक्रम निश्चित रूप से बनाए ही।

(१२) स्वाध्याय—मनोविकास के लिए जो महत्त्व शिक्षा का है, आत्म-विकास के लिए वही महत्त्व स्वाध्याय का है। यह दोनों प्रक्रियाएँ साथ-साथ चलती रहें तो गृहस्थ-जीवन में ऋषियों के जीवन जैसी विशेषताएँ इस युग में भी उपलब्ध की जा सकती हैं।

हमारे परिवार समाज का अंग होते हैं, दूसरे वर्ग के लोगों के साथ मिलना-जुलना, बोलना-बैठना प्रायः बना ही रहता है, ऐसी स्थिति में दूसरों का अच्छा-बुरा प्रभाव अपने लोगों पर न पड़े, यह नितांत संभव नहीं। बुराइयों के अंधकार से बचने के लिए स्वाध्याय का प्रकाश अनिवार्य है। ऐसा कोई भी घर न हो, जहाँ एक छोटा-सा 'ज्ञानमंदिर' न रहे। लोगों को उत्तम ज्ञान और चरित्र-निर्माण विषयक साहित्य घर में उपलब्ध होता रहे और उनके स्वाध्याय का क्रम भी चलता रहे, यह बहुत जरूरी है। विशेषकर आज की परिस्थितियों में जबकि बाहरी आडंबरपूर्ण वातावरण से अपने परिजनों के प्रभावित हो जाने का खतरा बढ़ा हुआ है।

(१३) सेवा और सहानुभूति—परिवारों की शक्ति और समुन्नति के लिए परिजनों का सहयोगी और सेवा-भावी होना आवश्यक है। विपत्ति के समय एक दूसरे की सहायता को अधिक और व्यक्तिगत सेवा के अधिकार को कम महत्त्व देना, दुःख में सहानुभूति, रोगादिक कष्टों में शादी आदि उत्सवों में हाथ बँटाना, कारुणिक अवसरों पर शांति और धैर्य देना-यह सब मानवीय सेवाएँ हैं, इनसे आत्मीय संबंधों में स्नेह और प्रगाढ़ता आती है। इसमें किसी प्रकार की लज्जा या संकोच नहीं अनुभव करना चाहिए। अपनी धर्मपत्नी के प्रति इसलिए उपेक्षा का भाव न रखिए कि लोग आपका उपहास करेंगे। कर्त्तव्य का पालन न करना एक तरह का पाप है, अतः सेवा का अभ्यास करते हुए, सहानुभूति के नियम का पालन करते हुए परिजनों को भी साथ-साथ उसकी प्रेरणा देनी चाहिए। मिल-जुलकर काम करने से बड़े-बड़े काम सिमट जाते हैं। एक-दूसरे के प्रति सेवा और सहानुभूति रखने से

कठिन परिस्थितियाँ भी संतोषपूर्वक कट जाती हैं। असहायों और आवश्यकताओं के समय परिजनों के काम आने के नैतिक कर्त्तव्य और उसके ढंग का ज्ञान हर सद्गृहस्थ हो होना चाहिए।

(१४) मितव्यता—परिवार के हर व्यक्ति को मितव्ययी होना चाहिए। खरच उतना ही करना चाहिए, जो अनिवार्य रूप से आवश्यक है। जो खरचा किया जाए बजट बनाकर किया जाए। एक-एक पाई का हिसाब हर सदस्य लिखे और यह देखे कि जो पैसा उसने खरचा वह जीवनोत्कर्ष के लिए सदुपयोग के रूप में लगा या नहीं? व्यसन, अहंकार, प्रदर्शन, शेखीखोरी या ऐसी बातों में खरच करने पर प्रतिबंध होना चाहिए, जिनसे भौतिक या आत्मिक प्रगति में कोई योगदान नहीं मिलता। मितव्ययी व्यक्ति ही सदाचारी, ईमानदार और खरा हो सकता है। जिसे फिजूलखरची की आदत है, उसे आज नहीं तो कल अनैतिकता का पल्ला पकड़ना पड़ेगा। इसलिए फिजूलखरची की बुरी आदत से परिवार के हर सदस्य को बचाया जाना चाहिए।

उपरोक्त १४ सूत्र परिवार-निर्माण के लिए बहुत आवश्यक और उपयोगी हैं। इन्हें समुद्र-मंथन के समय निकले हुए १४ रत्नों की तरह नीति-पथ्य ही मानना चाहिए। आजकल इनसे सर्वथा विपरीत परिस्थितियाँ दिखाई दे रही हैं। फलस्वरूप सुख, स्वभाव, संगठन-इन तीनों दृष्टियों से हमारे गृहस्थ कष्ट, क्लेश, कठिनाइयों और कटुताओं से ग्रस्त हैं, इनको दूर करने के लिए आंदोलनात्मक प्रयास की आवश्यकता है। यह प्रयत्न हमें अपने-आपसे, अपने परिजनों से ही प्रारंभ कर देना चाहिए।

परिवार गोष्ठियों का प्रचलन—गृहस्थाश्रम समाज को श्रेष्ठ नागरिक देने की खान है। भक्त, ज्ञानी, संत महापुरुष, विद्वान, पंडित गृहस्थाश्रम से ही निकल कर आते हैं। तेजस्वी, मनस्वी वीर और प्रतापी, जीवन-मुक्त आत्माएँ भी गृहस्थ में ही जन्म लेती हैं। पर जीवात्मा को अपने विशाल अस्तित्व में प्रकट होने के लिए वातावरण भी तो चाहिए। महातपस्वी विश्वामित्र, ययाति, नृग, बाजिश्रिवा आदि महापुरुष जब सांसारिक प्रलोभनों में फँसकर गिर सकते हैं तो दूषित वातावरण में पैदा हुए बच्चे भला किस प्रकार महापुरुष बन सकते हैं? उन्हें संस्कारों में पकाने वाला वातावरण

चाहिए। ठीक वैसे ही, जैसे कच्ची ईंट को पकाया जाता है, जिस तरह सोने को संस्कारित किया जाता है। इसके लिए पिछले अनुभवों और वर्तमान साधनों के सम्मिश्रित प्रयोग की आवश्यकता है। परिवार गोष्ठियों के प्रचलन को भी एक ऐसी ही मनोवैज्ञानिक प्रणाली मानना चाहिए, जिससे वर्तमान पारिवारिक बुराइयों को बदलकर सुनागरिक की स्थिति उत्पन्न की जा सकती है।

प्राचीन काल में स्वजनों के निर्माण के लिए उपयुक्त वातावरण अपने आप मिल जाता था। किंतु जब जब घरों में उच्च आचरण, आदर्शजीवन और चरित्र-निष्ठा का अभाव हो गया है, तब परिवार के कुछ विचारवान व्यक्तियों को वातावरण बदलने के लिए यह पग उठाना आवश्यक है। कुछ बुद्धिमान लोग और पढ़े-लिखे गृहस्थ-जीवन को महान बनाने के लिए कटिबद्ध हो जाएँ तो दूसरे लोग भी उनसे प्रेरित हुए बिना न रहेंगे। अच्छाइयों के प्रति आग्रह का भाव अभी भी लोगों में कम नहीं, केवल मार्ग-दर्शन की आवश्यकता बाकी है।

परिवार-गोष्ठियों का स्वरूप यह है कि दिन में कम से कम एक घंटा के लिए परिवार के सब सदस्य इकट्ठे हों और परस्पर विचार-विनिमय करें। एक दूसरे की कठिनाइयाँ जानी जाएँ, मनोमालिन्य हो तो उसका कारण पूछा जाए, किसी को कोई गलतफहमी हुई हो तो उसे जाना जाए और उनका सर्वसम्मत निराकरण किया जाए। यह प्रक्रिया परिवारों को विशृंखलित होने से बचाने के लिए और पारस्परिक संबंधों को घनिष्ठ बनाने के लिए बहुत आवश्यक है। कई बार ऐसी कोई बात होती है जिसे घर के आदमी संकोच, लज्जा, भय आदि कारणों से अभिभावकों के सम्मुख प्रकट नहीं करते और भीतर ही भीतर घुला करते हैं। किन्हीं को कोई शिकायत करनी होती है, पर उनकी बात सुनी नहीं जाती, इसलिए वे औरों से बुराई करते घूमते हैं। इन सब कारणों को दूर करने का एक ही उपाय है कि सब लोग शाम को बैठकर थोड़ी देर इन सब बातों पर चर्चा कर लिया करें और जिस किसी को कठिनाई या कष्ट हो, उसे दूर करने के लिए उदारतापूर्वक प्रयत्न किया करें। किसी को मनोमालिन्य हो तो उसको प्रेम पूर्वक समझाना, सिखाना चाहिए। परिवार की आंतरिक एवं आर्थिक स्थिति का भी परिजनों को ज्ञान कराना चाहिए, ताकि यदि उनकी कुछ मांगे हों तो वह उन्हें

अपने साधनों के आकार-प्रकार के अनुरूप ढालें और कोई बड़ी या असंगत माँग न करें।

लादें नहीं ढालें—आदर्श और सिद्धांत कितने ही अच्छे क्यों न हों, उन्हें यदि किसी को बंधनपूर्वक अपनाने के लिए कहा जाएगा तो उससे स्वभावतया कष्ट होगा और लोग किसी अच्छी बात को भी स्वीकार न करना चाहेंगे। परिवार में कोई समस्या आती है और उसका निर्णय किया जाता है तो वह निर्णय एक व्यक्ति के हित में होता है, दूसरे के विरोध में, प्रतिपक्षी ने भले ही गलती की हो, पर वह बुरा मान जाएगा। इसलिए अपनी बात को नम्र और मधुर शब्दों में दलीलों के द्वारा समझाया जाए। अच्छी बातों को समझाने में बहुत अधिक दबाब नहीं डालना चाहिए। झिड़कना या कटु शब्द कहना भी बुरा है। ऐसे अवसरों पर समझाने का सबसे अच्छा तरीका यह है कि किसी बुराई की सीधी टीका करने की अपेक्षा उसे अप्रत्यक्ष रूप में कहा जाए। किसी में आलस्य का अवगुण हो तो निरालस्यता और श्रमशीलता के लाभ बताकर उसको रचनात्मक सुझाव दिए जाएँ। तंबाकू पीना हानिकारक है, यह तो पीने वाला भी जानता है। आप तो उसे यह बताइए कि तंबाकू न पीने से क्या लाभ हैं? व्यक्तिगत आक्षेप की बात हो तो भी जो उसका विरोधी गुण हो, उसकी व्याख्या करने से लोगों को अपने निर्णय के पक्ष में किया जा सकता है, इससे अपनी बुराइयों को समझने का अवसर भी उन्हें अपने आप मिल जाता है।

कथा-कहानियाँ सुनाना—परिवार गोष्ठियों का प्रचलन पारस्परिक समस्याओं को लेकर प्रारंभ हो और अंत में उन्हें निर्माण की दिशा में अग्रसर किया जाए। आपसी संबंधों में यदि कुछ कटुता या बुराइयाँ आ गई हों तो कुछ दिन उन्हें दूर करने का प्रयत्न किया जाए, इसके बाद इन्हें पारिवारिक सत्संग का रूप देना चाहिए।

परिवार-गोष्ठियों में कहानी सुनाने का विशेष महत्त्व है। हमारे घरों में सोते समय दादी, नानी और माताजी द्वारा कथा-कहानियाँ सुनाने का प्रचलन है, पर उनमें कोई नैतिक आधार नहीं होता। कई बार तो वे गलत दिशा निर्देश करने वाली भी होती हैं। कहानियाँ शिक्षाप्रद और मानव-जीवन की समस्याओं को सुलझाने वाली होनी चाहिए। इनसे परिवार के लोगों को अच्छी दिशा देने का कार्य पूरा

किया जा सकता है। घरों की अनपढ़ स्त्रियाँ और अविकसित बच्चे व्याख्यान नहीं समझ पाते, क्योंकि उनकी बुद्धि ही परिपक्व नहीं होती। कथा, कहानी, इतिहास और पुराणों के माध्यम से उन्हें शिक्षा देना और अपना उद्देश्य व्यक्त करना अधिक सरल होता है।

कहते हैं—प्राचीन काल में दक्षिण के किसी प्रांत में महिलारोप्य नाम का एक नगर था। वहाँ का राजा अमरशक्ति बड़ा ही संपन्न शक्तिशाली और प्रतापी था, किंतु अपने तीनों पुत्री-बहुशक्ति, उग्रशक्ति और अनंतशक्ति के मूर्ख, अविनीत और उच्छृंखल होने के कारण वह सदैव दु:खी रहा करता था। उन पर किसी भी व्याख्यान, किसी भी अध्यापक की शिक्षा का प्रभाव नहीं होता था। राजा ने मंत्रियों से विचार-विमर्श किया और अंत में यह घोषणा करदी कि जो व्यक्ति इन बालकों को धर्म,राजनीति, लोक-व्यवहार की शिक्षा में निपुण बना देगा, उसे एक-सौ गाँव पुरस्कार में दिए जाएँगे।

अनेक शिक्षक और आचार्य आए, पर उन उद्दंड बालकों के आगे १० दिन भी न टिक सके। खबर दूर-दूर तक फैली, अंत में विष्णु शर्मा नामक एक आचार्य आए और उन्होंने ६ महीने में ही बच्चों को व्यवहार-कुशल-धार्मिक एवं राजनीतिज्ञ बनाने की प्रतिज्ञा की। आचार्य को तीनों पुत्र सौंप दिए गए। विष्णु शर्मा ने उनकी शिक्षा के लिए अनेक कथाएँ बनाईं, उनका एक ही कार्य था—प्रतिदिन तीनों बालकों को बैठाकर उद्देश्यपूर्ण कहानियाँ सुनाना। कहानियाँ बच्चों को बहुत पसंद आईं और वे विष्णु शर्मा के परम-प्रिय शिष्य बन गए। इन कहानियों को विष्णु शर्मा ने पाँच भागों में विभक्त किया है, इसलिए अंत में इनका नाम 'पंच-तंत्र' पड़ा। भारतीय कथा साहित्य में उनका अपना विशिष्ट स्थान है। इन कथाओं में जीवन-निर्माण के सभी आवश्यक तत्त्वों को बड़ी निपुणता के साथ जोड़ा गया है।

कहानियाँ मनुष्य के अंत:करण की भावनाओं की छूती हैं, इसलिए उनका प्रमाण अधिक और स्पष्ट होता है। हमें अपने परिवार-प्रशिक्षण-क्रम में कहानियाँ सुनाने का क्रम अवश्य रखना चाहिए। ऐसी कहानियों में धर्म कथाएँ, नीति-कथाएँ, ऐतिहासिक और पौराणिक कहानियाँ, ईसप की कथाएँ, सभी प्रकार की गुण और चरित्र-प्रेरक कहानियाँ कही जा सकती हैं। इन्हें प्रत्येक

अभिभावक को सीखना और पढ़ना चाहिए। कहानियाँ बड़ी जल्दी मस्तिष्क में उतर जाती हैं और देर तक नहीं भूलतीं। नित्य एक घंटा कहानियाँ सुनाने के लिए पुस्तकें ली जा सकती है।

बालकों का अधिकांश समय घरों में स्त्रियों के बीच बीतता है। पाँच वर्ष तक बच्चे में जो आवश्यक संस्कार पड़ते हैं, वह माताओं के पास से ही पड़ते हैं, अत: जो पढ़ी-लिखी महिलाएँ हैं, उन्हें यह कहानियों की पुस्तकें प्रयत्न पूर्वक पढ़ाई जाएँ। जो नहीं पढ़ी, उन्हें सुनाई जाएँ तो वे भी सीख सकती हैं। सुविधा के समय उन्हें अपने बच्चों को कहानियाँ सुनानी चाहिए इससे बच्चों की बौद्धिक एकाग्रता बढ़ती है, उनकी विचार-शक्ति जाग्रत होती है, साथ ही कल्पना को सार्थक दिशा मिलती है, जिससे बच्चों का चारित्रिक विकास तेजी से होता है। अत: कहानियाँ सुनाने और सीखने का क्रम प्रत्येक परिवार में होना चाहिए।

घटनाएँ और समाचार—परिवार-गोष्ठियों में अखबारों के समाचार भी सुनाने चाहिए ताकि सामाजिक स्थिति का भी ज्ञान रहे। शौर्य, सज्जनता, ईमानदारी की घटनाएँ सुनाई जाएँ, यह भी कहानियों के समान ही मनोरंजक और प्रेरक होती हैं। अनैतिक लोगों द्वारा लोगों को ठगने, मूर्ख बनाने के अनेक समाचार और घटनाएँ अखबारों में छपा करती हैं, अंधविश्वास से ठगे जाने और बेवकूफ बनने के समाचार आया करते हैं उन्हें भी सुनाना चाहिए ताकि लोग सामयिक परिस्थितियों को समझ लें। बुद्धि की दिशा निर्माण-परक हो यह अच्छी बात है, पर लोगों में चालाकी भी होनी चाहिए, ताकि वे बुरे लोगों द्वारा ठगे न जा सकें।

आर्थिक स्थिति का ज्ञान—घरों में ज्यादातार धन-संपत्ति को लेकर ही झगड़े उठते हैं, इस तरह का अविश्वास लोगों को भ्रमित न करे, इसके लिए यह आवश्यक है कि घर के प्रत्येक सदस्य को आर्थिक स्थिति की पर्याप्त जानकारी रहे। पूरी जानकारी न होने से कभी-कभी लोग आय से अधिक खर्च के लिए पैसे माँगते हैं और व्यय का संतुलन ठीक नहीं रखते, इसलिए प्रतिदिन के आय-व्यय से लोगों को अवगत कराया जाता रहे। मासिक, त्रैमासिक या वार्षिक बजट बनाकर लोगों के सामने रखा जा सकता है। आवश्यक लेन-देन, खरीद फरोख्त की परस्पर चर्चा भी हो सकती है, राय ली जा सकती है, ताकि किसी को यह

कहने का अवसर न मिले कि अमुक कार्य हमारी इच्छा के विपरीत हुआ है।

मनोरंजन—परिजनों के सात्विक मनोरंजन की भी व्यवस्था होनी चाहिए। संगीत, गायन-वादन का कार्यक्रम रखा जा सकता है। मेले-ठेले घूमने लिवा ले जाएँ। कोई धार्मिक या सामाजिक चल-चित्र दिखाए जाएँ तो उनसे कोई हानि नहीं होती। दर्शनीय स्थलों की ओर ले जाया जा सकता है। तीर्थ स्थानों का भ्रमण, अच्छे लोगों के संपर्क में कुछ दिन समय बिताते का भी कार्यक्रम होना चाहिए।

इन सब कार्यक्रमों का परिवार के सदस्य भावना और ईमानदारी के साथ पालन करें तो परिवार के पालन-पोषण के साथ उनकी बौद्धिक और चारित्रिक आवश्यकता की पूर्ति हो सकती है। परिजनों के निर्माण के लिए आवश्यक ज्ञान बढ़ाना, समय निकालना और कार्यक्रम बनाना हर गृहस्थ का परम पवित्र धर्म-कर्त्तव्य है। सभ्य समाज की रचना का आधार यही है। सुख समुन्निति तथा भौतिक समृद्धि और आत्म-कल्याण के मानवीय लक्ष्य को भी इस तरह सरलतापूर्वक संपन्न किया जा सकता है।

परिवार एक महत्त्वपूर्ण संगठन है—पारिवारिक-जीवन मनुष्य के विकास और सुविधाओं की दृष्टि से कितना महत्त्वपूर्ण है और उसकी रक्षा किस प्रकार की जा सकती है, यह उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है। यह एक ऐसा शक्तिशाली संगठन है जिसके प्रभाव से एक सामान्य व्यक्ति भी बड़े-बड़े कामों में हाथ डालने का साहस कर सकता और अनेक विघ्न-बाधाओं का साहसपूर्वक सामना कर सकता है। यद्यपि देश काल में परिवर्तन हो जाने के कारण अब बड़े परिवारों का सँभाल सकना अधिकांश व्यक्तियों के लिए कठिन हो गया है पर जो लोग स्वाभाविक उदारता, सहनशीलता और सूझबूझ के आधार पर उसका संचालन करते रहते हैं वे लाभ में ही रहते देखे जाते हैं। योरोप, अमरीका के जिन देशों का पूर्णरूप से यंत्रीकरण हो गया हो वहाँ तो सम्मिलित परिवारों की प्रथा प्राय: समाप्त होगई है, पर भारतवर्ष में, जहाँ अभी तक कृषिजीवी जनसंख्या ही सर्वाधिक है, और धार्मिक परंपराएँ भी भिन्न प्रकार की हैं, संयुक्त परिवार-प्रथा बड़ी उपकारी और आवश्यक होती है। उसमें अनेक व्यक्तियों की शक्ति और साधन मिलकर सफलता को बहुत अधिक बढ़ा सकते हैं और उससे

परिवार का प्रत्येक सदस्य अकेले रहने की अपेक्षा बहुत अधिक सुविधाएँ प्राप्त कर सकता है।

पर यह सब लाभ तभी संभव है जब लोगों में सहयोग, सच्चाई और समन्वय की भावना हो, जहाँ इनका अभाव होता है, वहाँ एक लेखक के कथानुसार—'सम्मिलित परिवारों में क्लेश, कलह, मनोमालिन्य, ईर्ष्या, द्वेष, आपाधारी दुराव एवं कपट का बोलबाला रहता है। घर में जो अधिक कमाता है अथवा अधिक चतुर है, जिसकी चलती है, वह अपने स्त्री-पुत्रों की सुविधा को प्रधानता देता है। बड़े छोटों पर रौब गाँठते हैं, उन्हें अनुचित तरीके से दबाते हैं। छोटे बड़ों का समुचित सम्मान नहीं करते, अपमानजनक शब्द कहते और अवज्ञा करते हैं। कोई काम से जी चुराता है, किसी को अत्यधिक परिश्रम करना पड़ता है। खान-पान, आदर सम्मान, कपड़े ,जेवर, श्रम-विश्राम, मनोरंजन, जेब, खर्च बीमारी की चिकित्सा आदि में जब असमान व्यवहार होता है तो ईर्ष्या के अंकुर मन में उगते हैं। जब यह पनपते रहते हैं, एक के बाद दूसरी घटनाएँ इन अंकुरों को पुष्ट करने के लिए उपस्थित होती रहती हैं, तो मनोमालिन्य की जड़ें मजबूत हो जाती हैं। ऐसे परिवार के लोग उन लाभों से वंचित रह जाते हैं जो संयुक्त कुटुंब प्रथा में मिलने चाहिए।'

इस कथन की सच्चाई में कुछ भी संदेह नहीं किया जा सकता। हम दोनों प्रकार के परिवारों के उदाहरण अपने आसपास ही देख सकते हैं। कुछ परिवार जो अच्छी तरह अनुशासित हैं और जिनके सदस्य सुमति पूर्वक परस्पर सहयोग करने को प्रस्तुत रहते हैं,बराबर फलते-फूलते रहते हैं। पर जिन परिवारों के सदस्यों के मन में ईर्ष्या-द्वेष के भाव व्याप्त हो जाते हैं वे शीघ्र ही चौपट भी हो जाते हैं। इसलिए बुद्धिमान व्यक्ति वही है जो अपने परिवार के सदस्यों को आरंभ से ही सुसंस्कृत बनाने की चेष्टा करता है और उनका मिश्रण तथा पालन-पोषण ऐसे ढंग से करता है कि शारीरिक तथा मानसिक विकास के साथ ही उनमें आत्मिक गुणों की भी वृद्धि होती रहे। ऐसे सद्भाव संपन्न व्यक्ति ही अपने परिवार, समाज, राष्ट्र और मानवता को सहयोग दे सकने में समर्थ होते हैं।

मुद्रक : युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा।